नेपाल से जुड़े कुछ सवाल

आनंद स्वरूप वर्मा

नेपाल से जुड़े कुछ सवाल

आनंद स्वरूप वर्मा

नेपाल नरेश ज्ञानेन्द्र ने 1 फरवरी, 2005 को सत्ता की बागडोर पूरी तरह अपने हाथ में लेकर एक बार फिर देश पर निरंकुश राजशाही थोप दी। नारायणहिती हत्याकांड की यही तार्किक परिणति भी थी। 1990 में निर्दलीय पंचायती व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष के फलस्वरूप नेपाल की जनता को जो नाममात्र का जनतंत्र हासिल हुआ था उससे भी वह वंचित हो गयी। इसके साथ ही जो लोग यह मानते रहे हैं कि नेपाल की स्थिरता संवैधानिक राजतंत्र जरूरी है उनका भी मिथ टूट गया...इस दौरान माओवादी जनयुद्ध भी अब दसवें वर्ष में प्रवेश कर गया है। माओवादियों की आज मुख्य मांग नई संविधान सभा का चुनाव कराना है ताकि देश को एक ऐसा संविधान मिल सके जिसमें राजतंत्र का कोई स्थान न हो और निर्णय लेने का अंतिम अधिकार आम जनता के पास हो। नेपाल नरेश के इस कदम से अब वे राजनीतिक दल भी माओवादियों की मांग के करीब आ गये हैं जो कल तक उनसे अपनी दूरी बना कर रखते थे। यह तय है कि नेपाल की राजनीति में हो रहे इस नये तरह के ध्रुवीकरण का असर आने वाले दिनों में राजशाही की समाप्ति के रूप में ही प्रकट होगा। प्रस्तुत पुस्तक **नेपाल से जुड़े कुछ सवाल** में नेपाल की मौजूदा स्थिति से उपजे अनेक सवालों का जवाब देने की कोशिश की गयी है।

नेपाल के माओवादी आंदोलन पर 2001 में प्रकाशित पहली पुस्तक 'रोल्पा से डोल्पा तक' के लेखक **आनंद स्वरूप** वर्मा पेशे से पत्रकार हैं। 1970 से '74 तक आकाशवाणी दिल्ली के हिंदी समाचार विभाग से संबद्ध। जनपक्षीय पत्रकारिता और वैकल्पिक मीडिया विकसित करने के लिए 1980 में 'समकालीन तीसरी दुनिया' का संपादन-प्रकाशन। पिछले 25 वर्षा से तीसरी दुनिया के देशों में चल रहे साम्राज्यवाद और सामंतवाद विरोधी आंदोलनों पर निरंतर लेखन। नेपाल की राजनीति के विभिन्न पहलुओं में गहन दिलचस्पी। 1994 में नेपाल के चुनाव में अंतर्राष्ट्रीय प्रेक्षक दल में शामिल। 1994 में दक्षिण अफ्रीका के प्रथम जनतांत्रिक चुनाव की दैनिक 'जनसत्ता' में रिपोर्टिंग। 1991 में 'दक्षिण अफ्रीका : गोरे आतंक के खिलाफ काली चेतना' पुस्तक का प्रकाशन। 1996 में 'आज की अफ्रीकी कहानियां' का अनुवाद व संपादन। अनेक पुस्तकों का अनुवाद जिनमें मुख्य हैं: आज का भारत (रजनी पामदत्त) भारतीय जेलों में पांच साल (मेरी टाइलर) माओ त्से तुंग का राजनीतिक दर्शन (मनोरंजन मोहंती) भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता (न्गुगी वा थ्योंगो), भारत में बंधुआ मजदूर (महाश्वेता देवी आदि।

भूमिका

नेपाल आज भीषण उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा है। राजतंत्र के खिलाफ नेपाली जनता के सशस्त्र संघर्ष ने 13 फरवरी को दसवें वर्ष में प्रवेश कर लिया। इस बीच नेपाल नरेश ज्ञानेन्द्र ने 1 फरवरी को सत्ता पर पूरी तरह कब्जा कर लिया देश में आपातस्थिति की घोषणा कर दी और जनता के सभी मौलिक अधिकारों को रह कर दिया। 1950 में राणाशाही के खिलाफ एक जनतांत्रिक संघर्ष की शुरुआत हुई थी और जनता को इसमें आशिक सफलता भी मिली थी जिसे 1960 में तत्कालीन नरेश स्व. महेन्द्र ने जनता से छीन लिया था और निरंकुश पंचायती व्यवस्था थोप दी थी। राज दरबार की यह तानाशाही 30 वर्षों तक जारी रही। 1990 में एक बार फिर नेपाली जनता को जनतंत्र का स्वाद मिला और निर्दलीय पंचायती व्यवस्था को हटा कर बहुदलीय व्यवस्था की स्थापना हुई। 1 फरवरी, 2005 को मौजूदा नरेश ने इस नाममात्र के जनतंत्र को भी समाप्त कर दिया। नारायणहिती हत्याकांड के बाद जिस तरीके से ज्ञानेन्द्र की ताजपोशी हुई उसकी तार्किक परिणिति यही थी।

नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के नेतृत्व में चल रहे जनयुद्ध ने आज सारी दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। इसने अमेरिका के नेतृत्व में सक्रिय साम्राज्यवादी देशों में बेचैनी पैदा कर दी है और दुनिया भर की साम्राज्यवाद विरोधी सामंतवाद विरोधी और जनतंत्र प्रेमी जनता के बीच एक आशा का संचार किया है। इसने दिखा दिया है कि नेपाली जवान साम्राज्यवादियों के हित में लड़ने वाले 'भाड़े के सैनिक' ही नहीं हैं- वे शहीद लखन थापा की गौरवशाली परंपरा के अनुयायी हैं जिसने अबसे लगभग 130 वर्ष पूर्व 1876 में बर्बर राणाशाही को उखाड़ फेंकने के लिए हथियार उठाये थे और अपने प्राणों की बलि दी थी। पिछले कुछ वर्षों के दौरान नेपाल की राजशाही को भारत सरकार ने 400 करोड़ रुपये और अमेरिका ने 1500 करोड़ रुपये से भी अधिक की सैनिक सहायता दी है। इसके अलावा ब्रिटेन, इजरायल, बेल्जियम आदि ने भारी मात्रा में हथियारों की सप्लाई की। बावजूद इसके नेपाल का जनयुद्ध निरंतर सफलता के नये कीर्तिमान स्थापित करता गया। पूंजीवादी प्रचारतंत्र ने इसके खिलाफ तरह-तरह के दुष्प्रचार किये पर नेपाली जनता के अंदर इसकी साख बढ़ती गयी और आज स्थिति यह है कि नेपाल के सभी 75 जिलों में इसकी धमक गज रही है। ऐसा इसलिए संभव हो सका क्योंकि

नेपाल की बहुसंख्यक शोषित और उत्पीड़ित जनता को महसूस हो रहा है कि उसकी मुक्ति का रास्ता यही है। खासतौर से ऐसे समय जब राजतंत्र और परंपरागत संसदीय राजनीतिक दलों से पिछले 14 वर्षों के दौरान उसका मोहभंग हो चुका हो और संवैधानिक राजतंत्र का छलावा उसकी समझ में आ चुका हो। 1 जून, 2001 के नारायणहिती हत्याकांड से लेकर 1 फरवरी, 2005 तक ज्ञानेन्द्र का जो बर्बर साम्राज्यवादपरस्त और घोर जनविरोधी चरित्र क्रमश: उजागर होता गया उससे आज वे राजनीतिक दल भी माओवादियों के साथ मिल कर राजशाही के खिलाफ संघर्ष तेज करने का मन बना चुके हैं जो कल तक संवैधानिक राजतंत्र को देश की स्थिरता के लिए अनिवार्य मानते थे और माओवादियों के साथ कोई मोर्चा बनाने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे। यह एक सुखद स्थिति है। माओवादियों की आज मुख्य मांग है- एक नये संविधान के लिए संविधान सभा का चुनाव। नेपाल नरेश के 1 फरवरी के निरंकुश कदम से इस मांग के पक्ष में ध्रुवीकरण की प्रक्रिया और तेज हो गयी है।

लेकिन आश्चर्य है कि आज भी अमेरिका और भारत के सत्ताधारी राजतंत्र को नेपाल की स्थिरता के लिए अनिवार्य मानते हैं। भारत सरकार का कहना है कि नेपाल के माओवादियों का हिंसा में विश्वास है और वे आतंकवादी हैं। नेपाल के संदर्भ में ही बात करें तो क्या भारत का यह दृष्टिकोण पाखंडपूर्ण नहीं है? क्या अतीत में भारत सरकार ने नेपाल के हिंसात्मक आंदोलनों को मदद नहीं पहुंचायी है? 1950 में पदच्युत महाराज त्रिभुवन को दुबारा सत्ता सौंपने और राणाशाही को समाप्त करने के लिए नेपाली कांग्रेस के नेतृत्व में जो सशस्त्र संघर्ष चला उसे भारत सरकार ने भरपूर समर्थन दिया। उस संघर्ष का वर्णन करते हुए नेपाली राजनेता काशी प्रसाद श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'नेपाल का इतिहास' में बताया है कि बीरगंज में मुक्ति सेना को काफी मात्रा में हथियार और पैसा पहुंचाया गया। उन्होंने यह भी बताया है कि यह सारा साज-सामान कश्मीर से बिहार लाया गया और वहां मुक्ति सैनिकों को सुसज्जित करके नेपाली सैनिक छावनियों पर आक्रमण किया गया। उनके अनुसार 'इस समय रक्सौल और बीरगंज दो परस्पर विरोधी सेनाओं के मोर्चे बने हुए थे और युद्ध भारतीयों तथा पर्वतीयों के मध्य होने जैसा प्रतीत होने लगा था।' इसके बाद उन्होंने विस्तारपूर्वक बताया है कि किस प्रकार भारतीय कमाण्डरों की देखरेख में सारे युद्ध का संचालन हुआ। 'गुरिल्ला सैनिकों के पास युद्धोपकरण का अभाव था और मातृका प्रसाद कोइराला को भी क्रांति के संचालन की क्षमता नहीं थी। फलस्वरूप सूर्य प्रसाद उपाध्याय तथा काशी प्रसाद श्रीवास्तव ने

रफी अहमद किदवई फिरोज गांधी स्व. जगन प्रसाद रावत से सहयोग प्राप्त करके पश्चिमी कमाण्ड को रुपयों और हथियारों से संपन्न किया। क्रांति संबंधी तथ्यों का प्रचार करने के लिए काशी प्रसाद श्रीवास्तव ने नई दिल्ली से 'फ्री नेपाल' नामक अंग्रेजी पत्र के प्रकाशन की व्यवस्था की। पश्चिमी नेपाल की जनक्रांति में फारवर्ड ब्लाक के नेता योगेश चन्द्र चटर्जी विश्वनाथ दुबे एवं लेबर लीडर शारदा सिंह ने भारी योगदान किया। फारवर्ड ब्लाक के बंगाली युवकों ने बम तथा विस्फोटक पदार्थ बनाने का कार्य किया।"

काठमाण्डो स्थित मानव अधिकार संगठन 'इनसेक' के एक प्रकाशन के अनुसार नेपाली कांग्रेस के नेतृत्व में जिस 'मुक्ति सेना' का गठन हुआ उसने अपना अभियान बीरगंज से शुरू किया और 11 नवंबर, 1950 को आधी रात में इसके 25-40 सैनिक बीरगंज पहुंचे। इन लोगों ने वहां के 'बड़ा हाकिम' (कमिश्नर) को सबेरे 4 बजे तक अपनी हिरासत में रखा। अगले दिन इस 'मुक्ति सेना' ने बिराटनगर पर हमला किया और वहां भी काफी हिंसा हुई। यह सारा अभियान बीरगंज और बिराटनगर तक ही सीमित नहीं था बल्कि नेपाल के विभिन्न हिस्सों में हिंसक वारदातें हुई। इनमें दोनों पक्षों के लोग मारे गये। 'नेपाल का इतिहास' के अनुसार पूर्वी नेपाल के तराई की अपेक्षा पश्चिमी नेपाल की तराई में जमींदारों का अत्याचार काफी था और वहां राणा सैनिकों का पहुंचना भी कठिन था। पूर्वी नेपाल में अनेक भारतीय समाजवादियों ने क्रांति में भाग लिया और नेपाली कांग्रेस के मुक्ति सैनिकों के साथ मिलकर संघर्ष करते रहे। यह भी बताया गया है कि 'बिराटनगर के युद्ध में भोला चटर्जी, देवेन्द्र प्रसाद सिंह एवं जमैयत राम खटनानी इत्यादि भारतीय समाजवादियों ने महत्वपूर्ण कार्य किया।'

इन सारी कार्रवाइयों के दौरान काफी लूटपाट हत्याएं और विध्वंसकारी घटनाएं हुई लेकिन इन्हें न तो कभी भारत सरकार ने आतंकवादी कार्रवाई कहा और न कभी इन घटनाओं के संदर्भ में हिंसा की निंदा की गयी।

इतना ही नहीं 1960 में भूतपूर्व महाराजा महेन्द्र ने जब बिश्वेश्वर प्रसाद कोइराला की सरकार को अपदस्थ कर पंचायती व्यवस्था थोप दी उसके बाद भी नेपाल में हिंसा की कई घटनाएं हुई। 22 जनवरी, 1962 को नेपाली कांग्रेस के लोगों ने महाराजा महेंद्र पर बम फेंका। राजा तो बच गये पर उनकी कार क्षतिग्रस्त हो गयी। इसके बाद नेपाली कांग्रेस ने देश के विभिन्न हिस्सों में सशस्त्र संघर्ष चलाने की घोषणा की और 28 मई, 1962 को गुल्मी में शाही नेपाली सेना के साथ उनका संघर्ष हुआ।

1962 में 'नेपाली कांग्रेस के छापामार' नामक एक संगठन के लगभग 100 लोग पिथौरागढ़ से नेपाल की सीमा में घुसे। इन सबको भारत सरकार की मदद से राइफलें दी गयी थीं। बाझंग की सीमा पर शाही सेना से इनकी मुठभेड़ हुई और उनका यह अभियान विफल हो गया।

'इनसेक' के दस्तावेज के अनुसार 26 अगस्त, 1972 को नेपाली कांग्रेस के युवा कार्यकर्ताओं ने हरिपुर पुलिस चौकी पर हमला किया। 5 मई, 1973 को तत्कालीन परिवहन मंत्री प्रयागराज सिंह सुवाल पर हथगोला फेंका गया। नेपाली कांग्रेस के शिव प्रसाद कंगल ने यह कार्रवाई की थी। 14 मार्च 1975 को भी महाराजा बीरेन्द्र पर उस समय बम फेंका गया जब वह बिराटनगर की यात्रा पर थे।

नेपाली कांग्रेस की देखरेख में चले अनेक सशस्त्र संघर्षों में ओखलाडूंगा का विद्रोह काफी याद किया जाता है जिसमें बड़ी संख्या में कांग्रेस के कार्यकर्ता मारे गये। इन सारे कार्यकर्ताओं को भारत में प्रशिक्षण दिया गया था। उपलब्ध विवरणों के अनुसार ओखलाडूंगा कांड में जिन लोगों ने भाग लिया वे हथियारों से लैस होकर वाराणसी से मधुबनी गये और फिर वहां से उन्होंने नेपाल की सीमा में प्रवेश किया। इनका लक्ष्य शाही नेपाली सेना की बैरकों पर हमला करना और शहर पर कब्जा करना था।

ऊपर जिन संघर्षों का जिक्र किया गया है उसमें जो हिंसा हुई उसको भारत सरकार का भरपूर समर्थन मिला। उसमें शामिल लोगों को कभी भारत सरकार ने आतंकवादी नहीं कहा। यहां तक कि इन वारदातों में शामिल पार्टी नेपाली कांग्रेस के साथ भारत सरकार के संबंध हमेशा मधुर बने रहे। इन काण्डों में शामिल लोगों को भारत में रहने के लिए सरकारी स्तर पर तमाम सुविधाएं उपलब्ध थीं।

आज माओवादी हिंसा के खिलाफ भारत सरकार या भारत के सत्ताधारी वर्ग की मुहिम क्या महज इसलिए है क्योंकि यह एक वर्ग संघर्ष है? यह राणाशाही को हटा कर किसी त्रिभुवन को गद्दी सौंपने जैसा नहीं है? क्या यह रवैया इसलिए है क्योंकि यह उत्पीड़ित वर्ग द्वारा उत्पीड़क वर्ग के खिलाफ छेड़ा गया जनयुद्ध है और इसीलिए इसमें जो लोग भाग ले रहे हैं या जो इसका समर्थन कर रहे हैं वे सभी आतंकवादी हैं? 'बड़ा हाकिम' को बंदी बनाने थाने और पुलिस छावनियां लूटने बैंक लूटने महेन्द्र और वीरेन्द्र पर बम फेंकने या ऐसी ही वारदातों को अंजाम देने वाले कभी भी 'आतंकवादी' की श्रेणी में नहीं डाले जायेंगे क्योंकि इनसे दमन और शोषण पर टिकी व्यवस्था

को कोई खतरा नहीं है।

दक्षिण एशिया में अमेरिकी साम्राज्यवाद की घुसपैठ और नेपाल की मौजूदा स्थिति पर हाल के वर्षों के दौरान मैंने अनेक बैठकों और गोष्ठियों को संबोधित किया। हर बैठक के बाद श्रोताओं के ढेर सारे सवालों का सामना करना पड़ता था। इस पुस्तिका में उन्हीं सवालों को संकलित किया गया है ताकि इन्हें व्यापक पाठक वर्ग तक पहुंचाया जा सके। संभव है कि कुछ सवाल अनुत्तरित भी रह गये हों। अगर अपने पाठकों से मुझे कुछ और सवाल मिलेंगे तो प्रसन्नता होगी।

आनन्द स्वरूप वर्मा

नई दिल्ली,

19 मार्च, 2005

अनुक्रम

परिशिष्ट-1 माओवादी नेता बाबूराम भट्टराई से बातचीत 54

परिशिष्ट-2 जब देश की संप्रभुता पर ही खतरा हो 65

परिशिष्ट-3 नेकपा (माओवादी) की नीतियों का संक्षिप्त परिचय 70

परिशिष्ट-4 दोराबा हत्याकांड पर मानव अधिकार आयोग की रिपोर्ट 75

परिशिष्ट-5 नेपाल में राजतंत्र का औचित्य 77

परिशिष्ट-6 महिला योद्धाएं 85

प्रश्न- नेपाल नरेश ज्ञानेंद्र ने 1 फरवरी, 2005 को सत्ता पर पूरी तरह कब्जा कर लिया और आपातस्थिति की घोषणा कर दी? इसका असर नेपाल की राजनीति पर क्या पड़ेगा?

ज्ञानेंद्र का कहना है कि ऐसा करके वह माओवादियों पर काबू पा सकेंगे और देश में स्थिरता लायेंगे। उनके इस कथन में कोई दम नहीं है। दरअसल महाराजा बीरेंद्र और उनके परिवार की हत्या के बाद से ही ज्ञानेंद्र चाहते थे कि सत्ता पर उनका निरंकुश अधिकार कायम हो। मई 2002 में जब उन्होंने संसद को भंग किया था उस समय से ही 1990 में हासिल आधा-अधूरा जनतंत्र खतरे में पड़ गया था। अपने इस कदम से उस आधे-अधूरे जनतंत्र को भी राजा ने समाप्त कर दिया। जहां तक माओवादियों से निपटने का सवाल है राजा के इस कदम से माओवादियों को और ताकत मिलेगी। ज्ञानेंद्र ने अखबारों पर सेंसरशिप लगा दी सभी मौलिक अधिकारों को समाप्त कर दिया और राजनीतिक नेताओं तथा बड़े पैमाने पर कार्यकर्ताओं को जेल में डाल दिया। अपने इस कदम से राजा ने माओवादियों के इस कथन की ही पुष्टि की है कि संवैधानिक राजतंत्र के रहते हुए लोकतंत्र कभी भी विकसित नहीं हो सकता। आने वाले दिनों में अब वे राजनीतिक दल भी जो नेपाल की स्थिरता के लिए संवैधानिक राजतंत्र को अनिवार्य मानते थे यह मानने के लिए मजबूर हो गये हैं कि देश को किसी भी तरह का राजतंत्र नहीं चाहिए। इस प्रकार हालात ने उन्हें एक ऐसे मुकाम पर ला खड़ा किया है जहां माओवादियों के साथ मोर्चा बनाकर ही वे राजशाही के खिलाफ निर्णायक लड़ाई लड़ सकते हैं।

प्रश्न- लेकिन क्या ये राजनीतिक दल माओवा7इदयों की मन से सहमत होगे? क्या के माओवादी विचारधारा से अपने को दूर नहीं मानते?

माओवादियों की आज जो प्रमुख मांग है उससे असहमत होने का कोई कारण नहीं दिखायी देता। इनकी प्रमुख मांग है- नयी संविधान सभा का चुनाव और इसी के लिए वे गोलमेज सम्मेलन तथा अंतरिम सरकार का गठन करना चाहते हैं। राजा ने अपने कृत्य से यह साबित कर दिया है कि मौजूदा संविधान हमेशा राजशाही के ही पक्ष में खड़ा होता है। ऐसी स्थिति में देश को एक नये संविधान की जरूरत है जिसमें सत्ता का केंद्रीकरण दरबार के हाथों में न होकर जनता के हाथों में हो और सेना पर दरबार का नियंत्रण न हो- यह निर्वाचित प्रतिनिधियों के अधीन हो। अब इन पार्टियों को यह महसूस कर लेना चाहिए कि मौजूदा संविधान में संशोधन करके नहीं बल्कि